|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

# || श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग**

1/6 (श्लोक 1-6), रविवार, 31 अगस्त 2025

**विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/fXwV5xc574o

## त्याग व संन्यास की श्रेष्ठता

भारतीय संस्कृति के वैभव का गुणगान, श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा रचित मधुराष्टक तथा श्री हनुमान चालीसा के साथ ही दीप प्रज्वलित करते हुये अठ्ठारहवें अध्याय के प्रथम भाग का विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम सबका ऐसा सौभाग्य जागृत हुआ है जो हम अपने इस मानव जीवन को सफल तथा सार्थक करने के लिये, इस मानव जीवन के परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये, अपना इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण करने के लिये श्रीमद्भगवद्गीता की यात्रा में प्रवृत्त हो गये हैं। पता नहीं, हमारे इस जन्म का कोई पुण्य कर्म है या पूर्व जन्म का कोई पूर्व कर्म है अथवा हमारे पूर्वजों के कुछ सुकृत हैं तथा किसी जन्म में किसी सन्त-महापुरुष की कृपा दृष्टि हम पर पड़ गयी, जिसके कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया कि हम श्रीमद्भगवद्गीता जी पढ़ने के लिये चुन लिए गए हैं। सभी से मेरा यह नम्र निवेदन है कि हमने गीता जी को नहीं चुना है गीता जी ने हमें चुना है।

पढ़ते-पढ़ते हम अठ्ठारहवें अध्याय पर पहुँच गये हैं। सम्भवतः सभी के सम्पूर्ण अध्याय हो गये होंगे अथवा एकाध अध्याय बचा हो क्योंकि भिन्न-भिन्न वर्गों की पद्धति भिन्न है किन्तु यदि सारे अध्यायों के पश्चात् यह अन्तिम अध्याय है तथा बीच के कई अध्यायों के विवेचन सुनने से आप वञ्चित रह गये हों तो श्रीज्ञानेश्वर महाराज ने इस अध्याय को '**एकाध्यायी गीता**' कहा है। **सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता जी का सार यह अठ्ठारहवाँ अध्याय है** अतः इसे पढ़ने मात्र से 'सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता जी में क्या है', यह ध्यान में आ जाता है।

### अठ्ठारहवें अध्याय के महत्व को समझने हेतु एक रोचक कथा

एक बार एक महाशय की सुबह साढ़े पाँच बजे की ट्रेन थी। उन्होंने तीन बजे का अलार्म लगाया। सुबह उठकर तैयार होकर स्टेशन की ओर बढ़े जो पन्द्रह मिनट की दूरी पर था। सुबह चार बजे वे घर से निकले। उन्होंने रिक्शे वाले से स्टेशन जाने के लिये ट्रेन का समय बताया तो वह आश्चर्य में पड़ गया और बोला कि आपकी साढ़े चार की ट्रेन है तथा आप सवा चार पर घर से निकल रहे हैं। महाशय बोले, "चार ही तो बजे हैं।" रिक्शे वाले ने बताया कि सवा चार बज रहे हैं। महाशय ने सोचा कि सम्भव है कि मेरी घड़ी की सेल समाप्त हो गयी हो। उन्होंने रिक्शे वाले से तेज रिक्शा चलाने का आग्रह किया। रिक्शे वाला भी शीघ्रता से रिक्शा भगाने लगा। ट्रेन बिल्कुल नियत समय पर थी। महाशय ने पुल के ऊपर से देखा तो उन्हें ट्रेन चलती हुई प्रतीत हुयी ।

उनका जाना अत्यन्त आवश्यक था अतः दौड़ लगाते हुये वे ट्रेन के अन्तिम डिब्बे में जाकर बैठ गये और हाथ जोड़कर बोले, "बाल-बाल बचे। ट्रेन पकड़ में आ गयी।" **यहाँ समझने की बात यह है कि अन्तिम डिब्बे में चढ़ने पर भी सम्पूर्ण ट्रेन पकड़ में आ गई। इसी तरह अट्ठारहवाँ पढ़ने मात्र से सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता जी समझ में आ जायेंगी।**

**अट्ठारह का अङ्क बड़ा विशेष है**। श्री वेदव्यास भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता जी को अट्ठारह अध्यायों में बाँटा है। अट्ठारह पुराण, महाभारत में अट्ठारह पर्व, महाभारत का युद्ध अट्ठारह दिन का, श्रीमद्भगवद्गीता जी में अट्ठारह अध्याय, माला में 108 मनके, किसी सन्त-महात्मा की उपाधि के आगे 'श्री श्री 1008' लिखना- यह सब क्यों?

ऐसा इसलिये होता है क्योंकि (1+8=9) **यह एक पूर्णाङ्क है**। गणित में 9 एक **चमत्कारी अङ्क** है। यह पूर्णाङ्क कहलाता है।

9 के पहाड़े में **9 * 1 = 9**
**9 * 2 = 18 (1+8=9)**
**9 * 3 = 27 (2+7=9)**
**9 * 4 = 36 (3+6=9)**
**9 * 5 = 45 (4+5=9)**
**9 * 10 = 90 (9+0=9)**
**9 * 11 = 99 (9+9=18)**
**(1+8 =9)**
**9 * 12 = 108 (1 + 0 + 8 = 9)**

आप इसको कितना भी आगे बढ़ाते जायें, इस की अन्तिम गणना 9 ही आयेगी।

9 के अतिरिक्त किसी अन्य अङ्क में यह शक्ति नहीं है इसीलिये हमारी भारतीय संस्कृति में नवग्रह की पूजा होती है। **9,18,108 शुभ हैं**।

अट्ठारहवाँ अध्याय **उपसंहार की तरह देखा गया है**। ज्ञान योग, कर्म योग, ध्यान योग तथा भक्ति योग-चारों की महिमा श्रीभगवान् ने यहाँ बता दी।

"जब हमने बारहवें अध्याय का चिन्तन देखा था तब उसमें देखा कि अर्जुन के प्रश्न के साथ उस अध्याय का प्रारम्भ हुआ कि **ज्ञान योग तथा भक्ति योग में क्या श्रेष्ठ है**?

अर्जुन यहाँ कहना चाहते थे कि **सगुण भक्ति करनी है या निर्गुण भक्ति करनी है**?

श्रीभगवान् ने इन दो बातों के साथ-साथ कई अन्य बातें भी बतायीं।
बारहवें अध्याय के बारहवें श्लोक में

**श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्, ज्ञानात् ध्यानम् विशिष्यते।**
**ध्यानात्कर्मफलत्यागस्,त्यागात्छान्तिरनन्तरम्।।**
अर्थात्

श्रीभगवान् ने ज्ञान से ध्यान को श्रेष्ठ बताया, ध्यान से कर्म के फल के त्याग को श्रेष्ठ बताया तथा त्याग की महिमा बताते हुये कहा कि त्याग से अकस्मात् शान्ति प्राप्त होती है।

अर्जुन को लगा कि मेरा युद्ध छोड़ने का निर्णय सही था। मैं भी तो प्रारम्भ में सब त्यागकर भाग जाना चाहता था। फिर अर्जुन के

मन में प्रश्न उठा कि मैं **त्याग** की बात कर रहा था या **संन्यास** की बात कर रहा था।

श्रीभगवान् गीताजी में इन **दोनों शब्दों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं**।

सत्रहवें अध्याय तक श्रीभगवान् ने **संन्यास शब्द का प्रयोग नौ बार किया है** तथा **त्याग शब्द का प्रयोग सात बार किया है**।

अठ्ठारहवें अध्याय को मिलाकर **चौदह बार संन्यास** तथा **बीस बार त्याग शब्द** आया अतः उनके मस्तिष्क में ये दो शब्द घूमने लगे। अर्जुन को लगा कि श्रीभगवान् बार-बार इन्हीं दोनों शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। कभी श्रीभगवान् ध्यान योग बता रहे हैं कभी ज्ञान योग बता रहे हैं कभी भक्ति योग बता रहे हैं तथा सत्रहवें अध्याय में तो भगवान् ने श्रद्धा त्रय विभाग योग भी बता दिया किन्तु अर्जुन यहाँ युद्ध से निवृत्त होना चाहते हैं इसलिए उनके मस्तिष्क में 'त्याग व संन्यास में श्रेष्ठ क्या है?' यह प्रश्न उठा। श्रीभगवान् अपनी बात पूरी करने वाले हैं, यह समझ कर अर्जुन ने अपनी अन्तिम शङ्का का भी निवारण करने हेतु उनसे प्रश्न किया कि त्याग क्या है व संन्यास क्या है? इसके साथ ही अर्जुन के मुख से अठ्ठारहवें अध्याय का पहला श्लोक निकला।

अर्जुन प्रश्नकर्ता है। प्रश्नकर्ता भी तीन प्रकार के होते हैं-

- सबसे पहले आते हैं वे प्रश्नकर्ता जो वक्ता की बुद्धि को परखने के लिए प्रश्न करते हैं। यहाँ तक कि स्वामीजी को भी परखने के लिए लोग प्रश्न पूछते हैं।
- दूसरी श्रेणी में वे प्रश्नकर्ता आते हैं जो अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रश्न करते हैं।
- तीसरे प्रश्नकर्ता सर्वोत्तम श्रेणी के होते हैं। ये प्रश्नकर्ता अपने मार्ग में आने वाली विघ्न बाधाओं एवम् शङ्का के निवारण हेतु प्रश्न करते हैं ।

**I want to apply this and if I want to apply then I need to clear my mind.**

यह साधारण बात नहीं है। रणभूमि है और दो सेनायें आमने-सामने खड़ी हैं। अर्जुन अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं अपनी शङ्का के निवारण के लिए अनगिनत प्रश्न कर रहे हैं।

**श्रीमद्भगवद्गीता जी का संवाद लगभग पैंतालीस मिनट का माना जाता है** और इस अवधि में अर्जुन ने भाँति-भाँति के प्रश्न कर डाले। श्रीभगवान् प्रसन्न हो गए।

तीसरे अध्याय के तीसरे श्लोक में अर्जुन ने पूछा-

**लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।**
**ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।3.3।**

साङ्ख्य योग और कर्मयोग में दो प्रकार की निष्ठाएँ हैं। साङ्ख्ययोग का अर्थ है संन्यास तथा कर्मयोग का अर्थ है त्याग। सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता जी में **अर्जुन ने कुल चौरासी श्लोक कहे हैं** किन्तु इस अकेले श्लोक में अर्जुन ने श्रीभगवान् को तीन सम्बोधन दिए।

**18.1**

**अर्जुन उवाच**
**सन्न्यासस्य महाबाहो, तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।**

**त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक्केशिनिषूदन॥18.1॥**

अर्जुन बोले - हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! (मैं) संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग-अलग जानना चाहता हूँ।

**विवेचन-**

केशिनिषूदन अर्थात् **केशि नामक असुर का मर्दन करने वाले**।

केशि एक राक्षस था जो घोड़ा बनकर आया था। श्रीभगवान् ने अपने हाथों से उसके जबड़े को फाड़ दिया था।

महाबाहो, आपके हाथों में कितना बल है, घोड़े में इतनी शक्ति होती है कि **शक्ति नापने की मात्रा को अश्वशक्ति (horse power-HP) से मापा जाता है**। शक्ति को नापने की जो इकाई बनायी गयी, उसे अश्वशक्ति से मापा गया।

ऋषिकेश **ऋषिक अर्थात् मन** तथा **ईश का अर्थ है-स्वामी अर्थात् जो मन के स्वामी हैं**। ऋषिकेश शब्द के दो तीन अर्थ हैं। जिसके **घुँघराले बालों वाला, वह भी ऋषिकेश**, जिसने **इन्द्रियों को, मन को जीत लिया** वह भी ऋषिकेश। जिसने **मन को जीता उसने जग को जीता**।

**"हमको मन की शक्ति देना**
**दूसरों की जय से पहले खुद को जय करें"**

जो अपने मन पर विजय प्राप्त करता है वह सब पर विजय प्राप्त करता है। जिसका मन नियन्त्रण में नहीं, उसका किसी पर भी नियन्त्रण नहीं। अर्जुन ने कहा, "हे महाबाहो, हे अन्तर्यामी, हे केशिनिषूदन, हे वासुदेव! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्व को पृथक-पृथक स्पष्ट रूप से समझाना चाहता हूँ। आप स्पष्ट रूप से बताइए। श्रीभगवान् प्रसन्न हो गए व मुस्कुराए। श्रीभगवान् ने सोचा अर्जुन ध्यान से सुन रहे हैं। तीसरे अध्याय की बात साङ्ख्य और कर्म को अलग-अलग समझना चाहते हैं। अब श्रीभगवान् ने उत्तर दिया।

**18.2**

**श्रीभगवानुवाच**
**काम्यानां(ङ्) कर्मणां(न्) न्यासं(म्), सन्न्यासं(ङ्) कवयो विदुः।**
**सर्वकर्मफलत्यागं(म्), प्राहुस्त्यागं(म्) विचक्षणाः॥18.2॥**

श्रीभगवान् बोले - (कई) विद्वान् काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं (और) (कई) विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिये और कई विद्वान ऐसा (कहते हैं कि) यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। (18.2-18.3)

**विवेचन-** श्रीभगवान् कहते हैं "पण्डितजन," पण्डित शब्द केवल ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त नहीं होता है। पण्डित का अर्थ होता है जो ज्ञानी हो, जिसने बहुत अधिक अध्ययन किया हो। कवि का मूल अर्थ बहुत अधिक विद्वान या ज्ञानी होता है और कविता लिखने वाले या कहने वाले को भी कवि कहते हैं।

श्रीभगवान् ने थोड़ी गहरी बात कह दी।

कर्म की परिभाषा क्या है? काम्य कर्म क्या होते हैं?

**वैदिक दृष्टिकोण से कर्म के प्रकार**

मूल में दो तरह के कर्म होते हैं-

- **विधि कर्म (do)**
- **निषेध कर्म (don't)।**

विधि कर्म में आता है जो करना चाहिए। इसमें दो कर्म होते हैं- **विहित कर्म और नियत कर्म**।

- विहित कर्म में आता है "क्या होना चाहिए?" मुझे स्वयं को स्वस्थ रखना चाहिए यह हो गया विहित कर्म।
- नियत कर्म है "मुझे क्या करना है।" मैं अपना भोजन ठीक-ठाक खाऊँगा, मैं प्रतिदिन व्यायाम करूँगा, यह हो गए नियत कर्म। बड़े दृष्टिकोण में जिस बात को देखा जाता है वह होता है विहित कर्म।

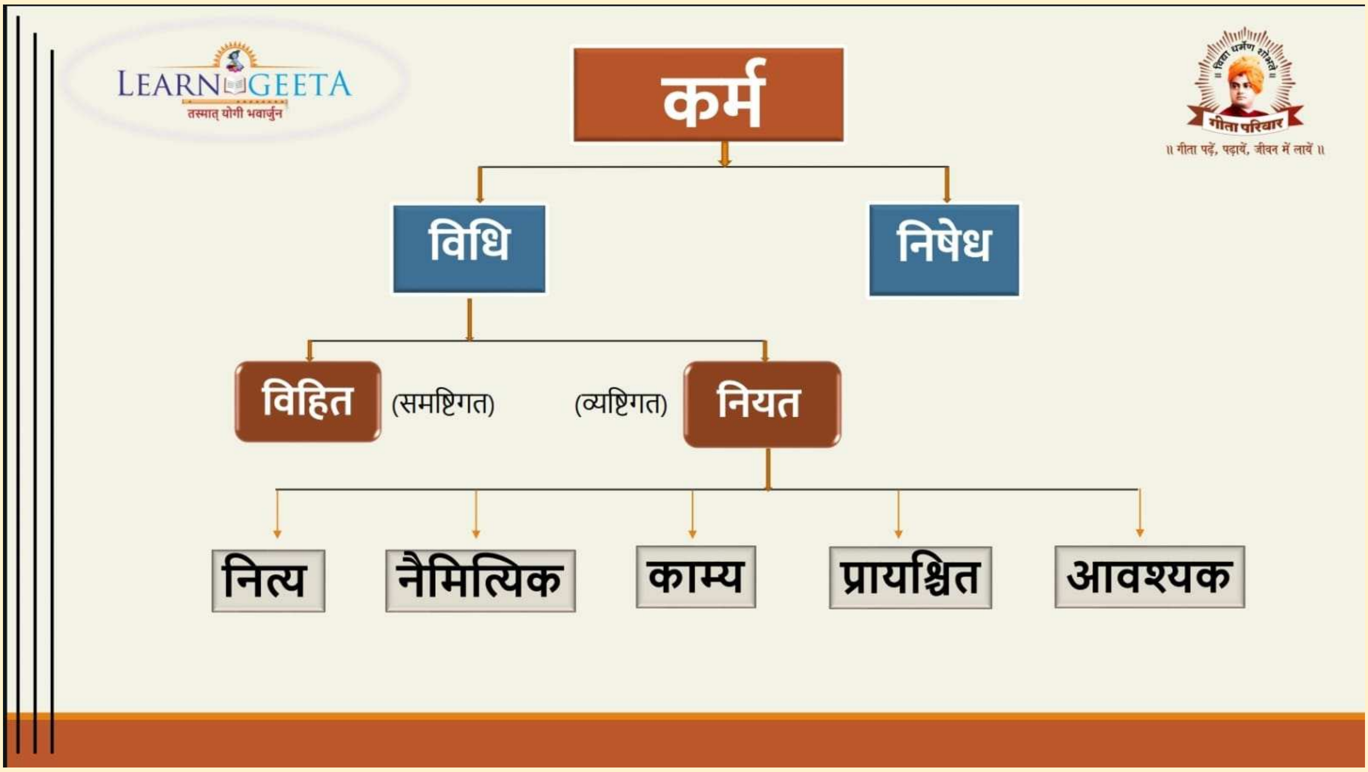


**विधिकर्म (समष्टिगत)** और **निषेध कर्म (व्यष्टिगत)**
विधिकर्म के अन्तर्गत **विहित कर्म** और **नियत कर्म** आते हैं।

नियत कर्म के पाँच भाग हैं-

**नित्य कर्म, नैमित्यिक कर्म, काम्य कर्म, प्रायश्चित कर्म और आवश्यक कर्म।**

**नित्य कर्म-** जो भी बातें मैंने अपने लिए निश्चित करके करी हैं, जैसे "मैं प्रतिदिन तीन माला का जप करूँगा, प्रतिदिन गीताजी का पाठ करूँगा, प्रतिदिन व्यायाम करूँगा आदि-आदि।"

यदि हम नित्य-कर्म नहीं कर पाए तो हमें उसका प्रायश्चित करना चाहिए क्योंकि हमने उसको करने का निश्चय किया था। **नित्य-कर्म का चुनाव या निश्चय बड़ी सावधानी से करना चाहिए**, वह **समय-साध्य** हो, **बल-साध्य** हो, **धन-साध्य न हो**। **अपने समय और बल से अधिक नियम नहीं लेना चाहिए** क्योंकि वह निभेंगे नहीं। अपने नित्य कर्म से किसी दूसरे को असुविधा नहीं होनी चाहिए। **नित्य-नियम छोटा होना चाहिए**। जैसे, मुझे प्रतिदिन तीन अध्यायों का पाठ करना है तो मैं एक अध्याय का नियम लूँ। छः पाठ के पारायण का नियम लिया और करते हैं बारह पाठ का पारायण, ऐसा होना चाहिए। **करता ज्यादा है पर नियम को न्यून रखता है**।

इसलिए हमारे यहाँ कहा गया है कि **आरम्भ में नियम सदा के लिए न लो**। पहले **तीन दिन, फिर सात दिन, फिर पन्द्रह**

**दिन, फिर महीने भर का, फिर एक वर्ष का लो**। एक वर्ष तक निभ गया तो फिर सदा के लिए लो। हमारी परम्परा नित्य-नियमों से भरी पड़ी है। **पहली रोटी गाय की। आखिरी रोटी कुत्ते की। नित्य गुरु, माता-पिता, पति को प्रणाम करना**।

सवेरे उठते ही प्रातः स्मरण वाचन-

**"कराग्रे वसते लक्ष्मीः, करमध्ये सरस्वती ।**
**करमूले तु गोविन्दं, मङ्गलं करदर्शनम् ॥**
**समुद्र-वसने देवी पर्वत-स्तनमण्डले |**
**विष्णु-पत्नी नमस्तुभ्यं पाद-स्पर्शं क्षमस्व मे ||"**

**बिना नित्य-नियमों के जीवन उत्कृष्ट नहीं** होता। **बिना नित्य-नियम के आध्यात्मिक उन्नति भी सम्भव नहीं है**। जीवन में कुछ न कुछ नित्य नियम लागू करना आवश्यक है। नियम छोटे होने चाहिए पर कड़े होने चाहिए। नहीं किए तो **प्रायश्चित भी करना चाहिए**।

**नैमित्यिक कर्म-** इसमें कोई पर्व, विवाह उत्सव, जन्म उत्सव, मृत्यु काल आदि आते हैं।

एक बड़ा सुन्दर प्रसङ्ग है। अयोध्याकाण्ड में जब श्रीभगवान् को वनवास की सूचना प्राप्त हुई, लक्ष्मण जी श्रीभगवान् के पास आए। बोले, "मैं भी चलूँगा।" श्रीभगवान् ने कहा, "कैसी बात करते हो! वनवास में जाना इतना सरल नहीं है। बिना पादुका के, वल्कल वस्त्र में जाना है। किसी स्थान पर रुकना नहीं है और हम दोनों चले जाएँगे तो माताजी-पिताजी का ध्यान, राज्य का ध्यान कौन रखेगा?

लक्ष्मण जी ने कहा-

**धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥**
**मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥**

लक्ष्मण जी बोले, "हे भगवान्! धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो, किन्तु जो मन, वचन और कर्म से आपके चरणों से ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है? मुझे आपके चरणों के सिवा और कुछ नहीं चाहिए।" बहुत समझाने पर भी जब लक्ष्मण जी नहीं माने तो राम जी ने कहा-

**मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥**
**मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥**

आरम्भ में तो लक्ष्मण जी क्रोध में श्रीराम जी के समीप आये थे। "हम पिता जी की बात नहीं मानेंगे। हम भरत जी को हरा देंगे आदि।" श्रीराम जी नहीं मान रहे हैं तो "मैं भी साथ में चलूँगा" यह हठ कर ली। जब श्रीराम जी ने कहा "नहीं जाना" तो लक्ष्मण जी हतोत्साहित हो गये। जैसे ही श्रीराम जी ने कहा, "हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो!" तो लक्ष्मण जी आनन्दित हो गये। लक्ष्मण जी बड़े खुश हो गये कि राम जी लेकर नहीं जाते तो मेरा घाटा हो जाता। अब तो बड़ा लाभ हो गया। एकदम प्रसन्न होकर भागते हुए गए माता से आज्ञा लेने।

जाना वन को है लेकिन हर्षित हो रहे हैं क्योंकि श्रीभगवान् साथ में लेकर जा रहे हैं। कैसी बढ़िया भावना है!

**हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥**
इतने प्रसन्न है लक्ष्मण जी मानो अन्धे को नेत्र मिल गए।

**जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥**

**पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी।**

अभी तक सुमित्रा जी को कुछ बात पता नहीं है। लक्ष्मण जी ने सुमित्रा जी को पूरी बात बतायी कि कैसे श्रीराम जी को वनवास मिला है?
जैसे ही सुमित्रा जी ने सारी बात सुनी, सुमित्रा जी तो स्तब्ध हो गयीं। यह कैसे हो सकता है? हम सब श्रीराम के राजतिलक के समारोह के लिए आनन्दित हैं। उत्सव मनाने के बारे में सोच रहे हैं। यह कैसी सूचना आ गई!

**गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥**

माता को ऐसे सहमा हुआ देखकर लक्ष्मण जी को लगा कि कहीं माताजी जाने के लिए मना न कर दें।

**लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह सब करब अकाजू॥**
**मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥**

लक्ष्मण जी सोच रहे हैं कि किस प्रकार विदा माँगें? सुमित्रा जी के चरित्र को देखना चाहिए। कुछ चरित्रों का वर्णन नहीं हुआ जिनमें सुमित्रा जी तथा उर्मिला जी का चरित्र मुख्य है।

**समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।**
**नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥**

सुमित्रा जी ने सीता जी तथा श्रीराम जी के सुन्दर, शील स्वभाव को समझ कर, उन पर राजा का प्रेम देख कर अपना सिर पीट लिया और कहा कि पापिनी कैकेयी ने कितना बुरा काम किया है।

**धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥**
**तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥**

सुमित्रा जी ने स्वयं को सम्भाला और कहा-
**"तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भांति सनेही।"**
"पुत्र! तुम्हारे माता-पिता तो श्रीराम तथा वैदेही हैं।

**अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँईं दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥**

जैसे जहाँ पर प्रकाश होता है, वहीं दिन होता है, उसी प्रकार तुम्हारे लिए तो जहाँ श्रीराम जी हैं, वहीं अयोध्या है।

**जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥**

यदि राम जी और सीता जी वन जा रहे हैं तो तुम्हारा यहाँ क्या काम है?
**गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥**
**रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥**

माता ने कहा, "गुरु, पिता, माता, बन्धु आदि की सेवा प्राणों के समान करनी चाहिए।

**पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥**
**अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥**

तुम उनके साथ वन जाओ और अपने जीवन का लाभ प्राप्त करो।

यह विचार करने योग्य बात है कि माँ कभी अपने पुत्र को वन भेजेगी? उन्होंने कहा कि तुम्हारी माता जानकी जी हैं और पिता राम जी हैं।

**यह नैमित्तिक कर्म है। अवसर आया है तो जाओ, राम जी की सेवा करो। माता अपनी चिन्ता नहीं कर रही हैं।**

## नैमित्तिक कर्म का एक अन्य उदाहरण

बाल गङ्गाधर जी तिलक की एक घटना है। वे उस समय काङ्ग्रेस के अध्यक्ष थे। एक बार एक पत्रकार उनका साक्षात्कार ले रहा था। उसने पूछा, "तिलक जी! मान लीजिये कि कल भारत स्वतन्त्र हो जाए तो स्वतन्त्र भारत में आप कौन सा पद लेंगे?" तिलक जी मुस्कुराए और बोले, "तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर! कल अगर भारत माता स्वतन्त्र हो गयीं तो परसों से मैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में जाकर गणित पढ़ाऊँगा।" पत्रकार हैरान हो गया और बोला, "आप क्या कह रहे हैं? आप काङ्ग्रेस के अध्यक्ष हैं। आप गवर्नर जनरल बन सकते हैं। आप प्रधानमन्त्री बन सकते हैं। आप जो चाहे वह पद ले सकते हैं। आप गणित क्यों पढ़ाएँगे?" तिलक जी ने मुस्कुरा कर कहा, "राजनीति मेरी रुचि का विषय नहीं है। **यह मेरे ऊपर नैमित्तिक कर्म है**। जिस क्षण यह निमित्त पूर्ण हुआ, उसी समय मैं अपने नित्य-कर्म की ओर लौट जाऊँगा। **मेरा नित्य-कर्म गणित पढ़ाना है**।

तीसरा है **काम्य-कर्म**। इसका अर्थ है कामनाओं की पूर्ति के लिए किए जाने वाले कर्म। इष्ट की प्राप्ति, अनिष्ट की निवृत्ति।

मानस का प्रसङ्ग है। दशरथ जी को पुत्र प्राप्ति नहीं हो रही थी। उन्होंने **पुत्र कामेष्टि यज्ञ** करवाया।

**एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥**
**गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥**

वे तुरन्त वशिष्ठ जी के पास गये और कहा, "मेरी आयु बढ़ती जा रही है किन्तु अभी तक सन्तान प्राप्ति नहीं हुई है। वशिष्ठ जी ने कहा कि वेदों में इसके लिए अच्छी व्यवस्था है। उन्होंने **शृङ्गी ऋषि को बुलाया** जिन्होंने **पुत्र कामेष्टि यज्ञ** करवाया। यज्ञ के समापन पर उन्होंने खीर दी और कहा कि आधा भाग बड़ी रानी को देना, बचे हुए आधे भाग के दो भाग करके उसका एक भाग बीच वाली रानी को देना। फिर वे दोनों अपने-अपने भाग में से एक भाग तीसरी रानी को देंगी।

**हमारे वेदों में तथा शास्त्रों में काम्य-कर्मों की व्यवस्था है**।

चौथा **प्रायश्चित कर्म** है। आजकल इसका चलन बिलकुल नहीं है। **मौन, उपवास, जप, पाठ, अनुष्ठान आदि इसके प्रकार हैं**। मेरी बात किसी को बुरी लग गई। एक घण्टे का मौन किया।

महात्मा गाँधी जी का एक प्रसङ्ग है। उन्होंने आह्वान किया कि कल सब विदेशी वस्त्रों की होली जलाएँगे। पूरे देश ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। इसके बाद उन्हें महसूस हुआ कि "बहुत बड़ी भूल हो गई। हमारा देश बहुत निर्धन देश है। अनेक निर्धन व्यक्तियों के पास धनवानों के उतरे हुए वस्त्र हैं। मेरे आह्वान पर उन्होंने वे भी जला दिये।" उन्होंने उसी समय अपने सारे वस्त्रों का त्याग कर दिया और आधी धोती में पूरा जीवन बिता दिया। यह **प्रायश्चित कर्म** है। किसी ने पूछा कि "आपके इस त्याग से कितने लोगों को वस्त्र मिलेंगे?" उन्होंने कहा "वस्त्र तो एक को भी नहीं मिल पाएगा किन्तु मेरे प्रायश्चित से उनका दुःख अवश्य कम होगा।"

पाँचवाँ कर्म है **आवश्यक कर्म**।

जिस कर्म को करना मेरा दायित्व है, वह करना चाहिए। अपना आवश्यक कर्म करें। कार्यस्थल पर कार्य अच्छे से करें। भोजन

बनाएँ तो ऐसा कि सबको पसन्द आए।

### आवश्यक कर्म की अनिवार्यता को समझाता हुआ अनूठा उदाहरण

एक राजा था। वह एक बार दूसरे राज्य में गया। उसके राज्य के सारे भवन बहुत सुन्दर थे। उसने राजा से पूछा तो उन्होंने कहा कि हमारे राजमिस्त्री ने बनाए हैं। वह राजा दूसरे राजा से कहने लगा कि कुछ दिन के लिए इसे हमारे राज्य में भेज दीजिये। राजा ने राजमिस्त्री को भेज दिया। कुछ समय बाद मिस्त्री ने अपने घर जाने की अनुमति माँगी तो राजा ने कहा कि मेरे एक विशेष प्रिय व्यक्ति के लिए एक घर और बना दो फिर चले जाना। राजमिस्त्री ने बेमन से वह अन्तिम घर बनाया और राजा के पास जाने की आज्ञा माँगने गया। राजा ने कहा, "जाओ अपने परिवार को लेकर इस घर में रहो।" उसने अपना सिर पीट लिया कि यदि पता होता कि स्वयं के लिए बनाना है तो बहुत सुन्दर घर बनाता।

इसलिए **हमें अपने सभी आवश्यक कर्म सदैव अच्छे से करने चाहिए**।

श्रीभगवान् कहते हैं कि इन सभी कर्मों में **काम्य-कर्मो का त्याग संन्यास कहलाता** है।

**18.3**

**त्याज्यं(न्) दोषवदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।**
**यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यमिति चापरे॥18.3॥**

**विवेचन-** कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि **सभी प्रकार के सकाम कर्म, दोष युक्त होने के कारण त्याज्य हैं** किन्तु कुछ विद्वानों ने कहा कि **यज्ञ, दान तथा ताप यह तीनों कभी भी त्यागने योग्य नहीं** हैं अर्थात् सारे कर्म त्यागना भी चाहे तो भी यज्ञ कर्म अर्थात् **अपने कर्तव्य कभी नहीं त्यागने चाहिये**। अपनी **तपस्या को नहीं त्यागना चाहिए** तथा **दान को नहीं त्यागना चाहिए**।

श्रीभगवान् चार बातें कह रहे हैं-

- **पहले, काम्या कर्मों का त्याग करो।**
- **दूसरा, कर्म द्वारा प्राप्त फल की इच्छा का त्याग करो।**
- **तीसरा, दूषित या स्वाभाविक रूप से दोषपूर्ण माने जाने वाले कार्यों का त्याग-**
  **यह संन्यास के भी अनुरूप है, जहाँ व्यक्ति हानिकारक या बाध्यकारी समझे जाने वाले कार्यों को छोड़ देता है।**
- **चतुर्थ, यज्ञ दान व तप त्यागने योग्य नहीं हैं।**

दूसरे तथा तीसरे श्लोक में भगवान् ने यह चार बातें कहीं।

जब हम मन्दिर जाते हैं तो सूची लेकर जाते हैं कि **भगवान् से क्या-क्या माँगना है जबकि मन्दिर केवल भगवान् के दर्शन करने के लिए जाना चहिए।**

अभी गणेशोत्सव चल रहा है। दर्शनार्थियों की लम्बी कतारें लगती हैं। दक्षिण भारत में तो ठीक है किन्तु उत्तर भारत में गणपति उत्सव मनाने का कारण समझ में नहीं आता है।

गणपति उत्सव मनाने का कारण यह है कि **श्रीगणेश जी उत्तर भारत में निवास करते हैं** तथा **दक्षिण भारत में वह अपने भाई कार्तिकेय से दस दिनों के लिए मिलने जाते हैं**। इसी कारण से दक्षिण भारत में **उन्हें 10 दिनों के लिए स्वागत करके दसवें दिन उनका विसर्जन कर दिया जाता है**। दक्षिण भारत में तो चलो वे बाहर से आते हैं किन्तु उत्तर भारत में सदैव

विराजमान हैं, यहाँ उनका विसर्जन नहीं करना है किन्तु यह अब प्रचलन में आ गया है।

आजकल सारे काम प्रचार के लिए किए जाते हैं। यहाँ तक की श्रीगणेश जी की पूजा भी विधिपूर्वक नहीं हो पाती है। दक्षिण में यह परम्परा विधि से है कि 10 दिन के लिए श्रीगणेश जी अपने भैया श्री कार्तिकेय जी से मिलने यात्रा पर आते हैं। उत्तर भारत में तो वे सदैव विराजमान हैं। यहाँ हम उनका विसर्जन कैसे कर सकते हैं?

यह **अशास्त्रीयवाद** है। करने के पीछे कारण भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति है। जीवन को माँगने वाला मत बनाओ, मैंने तुम्हें बहुत दिया है।
भगवान् के पास जाकर केवल उनके दर्शन का आनन्द लो, कुछ भी माँगो मत।

अब यहाँ माँग नहीं सकते ऐसी बात नहीं है, वे परमपिता है हम हमेशा उनसे माँग सकते हैं किन्तु कौनसा बच्चा अधिक अच्छा लगता है **जो नित्य कुछ ना कुछ माँगता ही रहता है या जो कभी-कभी माँगता है**?

जो नित्य माँगता है उसे हम कहते हैं कि तुम तो नित्य ही कछ ना कुछ माँगते रहते हो।

जब वह कभी-कभी कुछ माँगते हैं तो हम प्रसन्नता से उन्हें वह वस्तु लाकर दे देते हैं। इसी तरह से कभी-कभी माँगने वाला भक्त तो ठीक है किंतु जो नित्य माँगता रहता है, भगवान् भी सोचते हैं कि यह तो प्रतिदिन ही माँगता रहता है। आवश्यकता पड़ने पर हम उनसे माँग सकते हैं। वह हमारे परमपिता हैं किन्तु बिना कारण माँगते ही रहना ठीक नहीं है।

**सर्व कर्मफल के त्याग का अर्थ यह नहीं है कि हमें कर्मों का त्याग करना है**। हमें उस कर्म से मिलने वाले फल का त्याग करना है।
**दोष युक्त कर्मों का त्याग करें।**

श्रीभगवान् कहते हैं कि पहला और तीसरा यह संन्यास है तथा दूसरा व चौथा त्याग है।

**संन्यासी जन काम्य कर्मों का तथा न करने वाले कर्मों का त्याग करते हैं। ना उनकी कोई कामना रह जाती है और ना ही वे कोई अनुचित काम करते हैं**।

**फल की इच्छा का त्याग तथा यज्ञ दान व तप सदैव करते रहना यह त्यागी के गुण हैं।**

अर्जुन एक बार फिर विचार में पड़ गए तथा श्रीभगवान् से पूछा कि उनके लिए क्या सही है?

**18.4**

**निश्चयं(म्) शृणु मे तत्र, त्यागे भरतसत्तम।**
**त्यागो हि पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः(स्) सम्प्रकीर्तितः॥18.4॥**

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! (तू) संन्यास और त्याग - इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन; क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

**विवेचन-** हे पुरुश्रेष्ठ अर्जुन! संन्यास तथा त्याग में भी तू पहले त्याग के विषय में सुन क्योंकि त्याग भी सात्विक, राजसिक तथा तामसिक तीनों प्रकार के होते हैं। यहाँ श्रीभगवान् ने अर्जुन को पुरुषव्याघ्र नामक सम्बोधन दिया है- **पुरुषों में व्याघ्र, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में श्रेष्ठ**।

**18.5**

**यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं(ङ्) कार्यमेव तत्।**
**यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥**

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, (प्रत्युत) उनको तो करना ही चाहिये (क्योंकि) यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही (कर्म) मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

**विवेचन-** चौथे श्लोक में श्रीभगवान् ने अर्जुन को दो उपाधियाँ दी हैं- पहली **पुरुषव्याघ्र** तथा दूसरी **भरतसत्तम**।
आगे श्रीभगवान् ने कहा कि त्यागने की बात छोड़ो, क्या करना है वह सुनो।

भगवान् अपने **अन्तःकरण को पवित्र करने** की बात करते हैं। हमारे **यज्ञ का अर्थ है त्याग**।

उदाहरण के लिए हम अपनी चिकित्सा करवाने हेतु चिकित्सक के पास गए हुये हैं। साधारण सी बात है कि रोगी हैं तभी गए होंगे किन्तु यदि कोई आपात स्थिति (emergency) का रोगी आ जाए तो हम अपने स्थान पर उसे पहले परीक्षण करवाने दें। हम अपना पहले दिखाने का अधिकार छोड़ दें, यह भावना कि इसको मुझसे अधिक आवश्यकता है, इसको भी यज्ञ कहा गया है।

मान लीजिए फल जैसे आम लेकर आए और उसमें से दो आम अपने छोटे भाई के बच्चों को ऐसे ही बिना किसी से कुछ कहे, दे दिए। **छोटी-छोटी बातों में त्याग करने की आदत यज्ञ कहलाती है**।

**यज्ञ, दान और तप ये तीनों कर्तव्य स्वरूप करने योग्य तथा बुद्धिमान व्यक्ति को पवित्र करने वाले कर्म हैं**।

श्रीभगवान् कहते हैं कि इसे स्वभाव बना लो। यह मत मानो कि तुम कुछ विशेष कर रहे हो।

श्रीगुरुनानक देवजी कहते हैं-

**तीरथ जप और दान करे, मन में धरे गुमान।**
**नानक निष्फल जात है जो कुंजर स्नान।।**

कुञ्जर अर्थात् हाथी को स्नान करना बहुत प्रिय होता है, वह घण्टों-घण्टों तक जल में क्रीड़ा करते हुए स्नान करता है किन्तु जल से बाहर निकालने के पश्चात् वह अपने शरीर पर सूँड़ से धूल डाल लेता है। उसका प्रयोजन यह होता है की जल की नमी धूल के कारण उसके शरीर पर लम्बे समय तक बनी रहे। धूल नमी को तो बनाए रखती है किन्तु हाथी के शरीर को पुनः अस्वच्छ कर देती है। **ठीक इसी प्रकार से दान, जप तथा तप करने वाला यदि गर्व करता है तो वे व्यर्थ हो जाते हैं।**

एक बात और है कि कभी-कभी जो कर्ता है उसके मन मे अहङ्कार नहीं होता है। जिसका स्वभाव ही ऐसा बन जाता है उसे गर्व नहीं होता है। अच्छा कार्य करने की आदत लगी हो और किसी दिन अच्छा कार्य ना हो पाए तो बुरा लगता है।

एक युवा सज्जन थे जो कथा में जाते थे तो जाकर कुर्सी पर बैठ जाते थे। कुछ दिन बाद ध्यान में आया कि वह सज्जन किसी और असमर्थ व्यक्ति के आने पर उठकर अपनी कुर्सी पर बिठा देते थे। उन्होंने कभी किसी को कुछ नहीं बताया। जब दो-तीन बार उनकी प्रतिक्रियाओं को देखा तब यह समझ में आया कि वे ऐसा क्यों करते हैं। अतः हमें भी त्याग करने की आदत डालनी चाहिए।

हमारे घरों में घर की स्त्रियाँ को भोजन करवाने के पश्चात् भोजन करती हैं। अत्यधिक आग्रह करने के बाद भी वे पहले भोजन नहीं ग्रहण करती हैं। घर के सभी सदस्यों का भोजन होने के पश्चात् ही वे भोजन करने बैठती हैं। यदि कोई व्यञ्जन समाप्त हो जाए तो भी कोई बात नहीं, वे किसी से कुछ नहीं कहती हैं। यदि ताजा भोजन समाप्त हो जाए तो बासी भोजन भी कर लेती हैं। घर के अन्य सदस्यों को कुछ भी पता नहीं लगता। यह **त्याग का स्वभाव** है। यह **उत्तम** बात है।

जीवन में त्याग करने की आदत लगनी चाहिए। प्रत्येक स्थान पर जाकर विशिष्ट बनकर नहीं रहना है अपितु अपना स्थान भी दूसरों को देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। हम अधिकारों के लिए लड़ते हैं, हम यह भूल गए हैं कि हम किस संस्कृति से हैं। हमारे यहाँ अधिकार माँगने की परम्परा नहीं है। **यह पश्चिमी सभ्यता की परम्परा है-मानवाधिकार, नागरिक अधिकार, बाल अधिकार, महिलाधिकार, पशु अधिकार**।

उच्चतम न्यायालय में पशु-अधिकारों की बात होने लगी है। हमारा **देश गौ भक्त से पशु भक्त कब बन गया यह पता ही नहीं चला**। स्वतन्त्रता के बाद से **गौहत्या को समाप्त करने का आग्रह निरन्तर** किया जा रहा है।

आज तक कोई भी न्यायालय इस पक्ष में निर्णय नहीं सुना सका है किन्तु अन्य पशुओं के अधिकारों के लिये तीन न्यायाधीशों की समूह ने दो दिनों में अपना निर्णय सुनाया। यह बहुत बड़ी विडम्बना है।

हम तो पहली रोटी गाय की और अन्तिम रोटी कुत्ते की सदैव से निकालते रहे हैं किन्तु **गौमता की उपेक्षा करके कुत्ते की रक्षा करना अनपेक्षित है**। इन आन्दोलन कार्यों में अधिकतर मांसाहार करने वाले लोग हैं जो स्वयं तो मांसाहार करते हैं किन्तु पशुओं के अधिकारों के लिए लड़ते हैं। ऐसा लगता है कि लोगों का विवेक ही चला गया है। आगे श्रीभगवान् कहते हैं कि **क्या करना है उसका विचार करो**; **क्या छोड़ना है इसका विचार मत करो**।

श्रीभगवान् किसी की बात काटे बिना अपनी बात पर जोर देते हैं। **वे उत्तम वक्ता हैं**। चतुर श्रोता क्या-क्या पूछेंगे; वह श्रीभगवान् पहले ही बता देते हैं।

**18.6**

**एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं (न्) त्यक्त्वा फलानि च।**
**कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं (म्) मतमुत्तमम्॥18.6॥**

हे पार्थ ! इन (यज्ञ, दान और तपरूप) कर्मों को तथा (दूसरे) भी (कर्मों को) आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये - यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

**विवेचन-** श्रीभगवान् कहते हैं, "हे पार्थ! इस यज्ञ, दान और तप कर्मों को तथा **सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मों को आसक्ति और फलों का त्याग करके अवश्य ही करना चाहिए**, यह मेरा निश्चित मत है। "

यह बात श्रीभगवान् ने बहुत बल देकर बोली है कि "**यह मेरा उत्तम मत है**।" श्रीभगवान् यहाँ पर **विहित कर्मों** की बात कर रहे हैं। **कर्मफल छोड़ दो, कर्मफल में आसक्ति होती है**।

**गीता प्रेस के संस्थापक, परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्री जयदयाल जी गोयन्दका का सत्सङ्ग उस समय में अद्भुत होता था**। सारे महात्मा उनका सत्सङ्ग सुनने आते थे। सेठ जी के एक निकट सम्बन्धी ने पूछा कि "जो लोग आते हैं, आपके सत्सङ्ग की बहुत प्रशंसा करते हैं तो आपके मन में अहङ्कार नहीं आता? आप कैसे इस पर प्रतिक्रिया देते हैं? यह तो हमें पता है कि आपको अहङ्कार नहीं आता है लेकिन फिर भी आप उसको किस रूप में लेते हैं?" सेठ जी ने बिल्कुल सहजता से कहा, "इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि सामने वाला व्यक्ति अधिक उदार है जो मेरी इतनी प्रशंसा कर रहा है।"

यह बात सुनने में बहुत साधारण है किन्तु कोई अपनी प्रशंसा कर रहा है, इसमें भी हमारी विशेषता नहीं है बल्कि प्रशंसा करने वाले की उदारता है।

श्रीभगवान् कह रहे हैं कि कर्तव्य कर्मों को आसक्ति और कर्मफल का त्याग करके अवश्य करना चाहिए। **"मुझे क्या मिलेगा?" यह विचार न करके, "मुझे यह करना है" यह विचार करना चाहिए**। हमारी स्थिति यह है कि हम जो भी कार्य करते हैं, "मुझे इसके बदले क्या मिला?" यह पहले सोचते हैं।

विवेचन में भी अनेक व्यक्ति प्रश्न करते हैं कि "मैंने तो उनके साथ इतना अच्छा व्यवहार किया, बदले में वह मेरे लिए पलट के कुछ नहीं करते तो मेरा मन खिन्न हो जाता है।" हम जो करते हैं, उसके फल के रूप में सामने वाले से यह अपेक्षा करते हैं कि वह उसका उत्तर किस प्रकार देगा। अरे! **हम अच्छे हैं इसलिए अच्छे कार्य करते हैं, सामने वाला उसका कैसा प्रत्युत्तर देगा, इसलिए हम अच्छे कार्य नहीं करते हैं**।

यह अच्छे व्यक्ति की पहचान है, **"मैं अच्छा कार्य करता हूँ क्योंकि मैं अच्छा ही कार्य कर सकता हूँ। मेरा जन्म इसीलिए हुआ है**। अपने संस्कारों में यह मैंने पाया है, इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। **कुछ व्यक्ति मधुर वाणी के स्वामी होते हैं। वे सदैव मधुर ही बोलते हैं। यह उनके पूर्वजन्मों के संस्कारों से होता है**।

इसी के साथ हरि नाम सङ्कीर्तन करते हुए सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

**विचार मन्थन**

**प्रश्नकर्ता**- विशाल शाह भैया।
**प्रश्न**- वैराग्य क्या है?
**उत्तर**- जिस क्षण व्यक्ति की विषयों के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाए तत्क्षण ही उसके अन्त:करण में वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। किसी विशेष भोजन, वस्त्र आदि के प्रति अनासक्ति का भाव की उत्पत्ति, जबकि वह वस्तु पूर्व में उस जीव की प्रिय थी, मन में वैराग्य का प्रादुर्भाव है।

**नेत्रों, कर्णों, त्वचा, जिह्वा आदि इन्द्रिय विषयों के प्रति विरक्ति अर्थात् उन भौतिक विषयों में रुचि समाप्त हो जाना तथा श्रीभगवान् के कमल रूपी चरणों का आश्रय ग्रहण करना ही वास्तविकता में वैराग्य है।**

**प्रश्न**- जीवन में सुख क्या है?
**उत्तर**- किसी व्यक्ति के जीवन में दो प्रकार के सुख हो सकते हैं-

- **भोग जनित सुख**- मनुष्य को इस सुख की प्रतीति तो होती है परन्तु वास्तव में वह उसे प्राप्त नहीं होता है। जैसे यदि हम विचार कर रहे हैं कि किसी व्यक्ति विशेष या वस्तु अथवा परिस्थिति विशेष के अपने पक्ष में होते ही हम सुखी हो जाएँगे। तब हमारे मन के अनुसार होने पर भी हम कुछ ही क्षण प्रसन्न रहते हैं। परन्तु अगले ही क्षण जीव का अन्त:करण अन्य विषयों में प्राप्ति हेतु उद्वेलित हो उठता है तब हम अन्य विषयों का भोग कर सुख प्राप्ति की इच्छा से युक्त हो जाते हैं तथा स्वयं द्वारा पूर्व में विषय भोग से प्राप्त होने वाले सुख को अपने मस्तिष्क से विस्मृत कर देते हैं।

हमारी कुछ इच्छाएँ जैसे आईफ़ोन प्राप्ति की, विवाह करने की, गृह निर्माण आदि की यह समस्त कामनाएँ किसी व्यक्ति के मन में लम्बे समय से हैं अत: उनकी पूर्ति हेतु वह कठोर परिश्रम भी करता है परन्तु जब उसकी यह इच्छा पूर्ण हो जाती है तब उससे प्राप्त सुख उस व्यक्ति के जीवन में अधिक समय तक नहीं ठहर पाता । एक कामना की पूर्ति सहित, उस जीव का मन यह विचार कर कि अन्य किसी इच्छा की पूर्ति में ही मेरा सुख निहित है, की प्राप्ति में तत्पर हो जाता है।

जैसे किसी व्यक्ति द्वारा वातानुकूलक क्रय किए जाने पर उसे तत्काल सुख का तो अनुभव होता है परन्तु दस वर्ष पश्चात् उस व्यक्ति हेतु वह सुख प्राप्ति का साधन न रह कर दुःख का कारक भी बन जाता है क्योंकि जब बिजली चली जाती है तब वह उस वातानुकूलक के न चलने पर दुःखी हो जाता है क्योंकि वह उस भौतिक वस्तु का दास हो जाता है।

ऐसा ही एक अन्य उदाहरण प्रतिदिन व्यक्ति को दो समय के भोजन को प्राप्त करने सम्बन्धित है। जब हम भोजन ग्रहण करते हैं तब कभी हमारे मन में यह विचार आता है कि अच्छा है, हमें दोनों समय का भोजन प्राप्त हो रहा है। भोजन की प्राप्ति सम्बन्धी ऐसे विचार उसी व्यक्ति को आते हैं, जिसके समक्ष प्रतिदिन दोनों समय के भोजन की आपूर्ति का कोई साधन नहीं है अत: वह इस जुगत में निरन्तर तत्पर रहता है कि किसी प्रकार दोनों समय का भोजन प्राप्त हो जाए तब मैं पूर्णत: प्रसन्न हो जाऊँगा। परन्तु क्या ऐसा सम्भव है कि एक इच्छा की पूर्ति के पश्चात् किसी अन्य कामना की पूर्ति हेतु मन व्यथित न हो। यदि

अपने अन्त:करण में विषय भोगों की प्राप्ति को लेकर उठ रही कामनाओं से युक्त विचारों को अवरुद्ध न किया गया तब वे निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती हैं।

- **शान्ति जन्य सुख**- जिसमें तृप्ति का अनुभव होता है।

**हम सुख क्यों चाहते हैं?**

अपने सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त व्यक्ति इस विचार को अपने अन्त:करण में सञ्जोय रखता है कि जीवन में सुख प्राप्त हो जाए तब शान्ति स्वतः ही प्राप्त हो जाएगी तथा उस सुख की प्राप्ति हेतु वह अपनी निद्रा, अपने सम्बन्धों, यहाँ तक की स्वयं की शान्ति को भी त्याग देता है। यह व्यक्ति उस सुख की प्राप्ति हेतु प्रयासरत है, जिसके द्वारा उसे शान्ति की प्राप्त होगी। परन्तु ऐसा कदापि सम्भव नहीं होता।

यदि हम इसके विपरीत विषय पर विचार करें तो पाएंगे कि यदि व्यक्ति अपने अन्त:करण में व्याप्त शान्ति को किसी भी प्रकार से प्रभावित न होने दे तब उसके अन्त:करण में वह शान्ति सहित सुख भी सदैव स्थिर रहेगा। वे दोनों कदापि नष्ट नहीं होंगे।

इसी सम्बन्ध में एक इटेलियन कथा है, जो सुख सहित शान्ति की सदैव स्थिरता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है-

**कथा का शीर्षक भी बेहद रोचक है- The Happy Man's Shirt**

एक समय में इटली में एक राजा राज करता था। वह राजा किसी कारणवश बेहद उलझन में था। तब उसने अपने ही राज्य के एक बेहद प्रसिद्ध ज्योतिषी को अपनी उलझन सुलझाने हेतु बुलाया। ज्योतिषी राजा से कहता है कि आपके दुःख तथा उसका जो भी कारण है, वह आपके ही राज्य के उस व्यक्ति के वस्त्र (Shirt) धारण करने से समाप्त हो सकता है, जो अपने जीवन में बेहद हर्षित हो। उसके मन में कोई दुःख, क्लेश, कष्ट तथा क्रोध न हो।

तब राजा अपने सैनिकों को ऐसे व्यक्ति की तलाश में भेज देता है, जो संसार का सर्वाधिक प्रसन्न व्यक्ति हो। सैनिक सम्पूर्ण राज्य में ऐसे व्यक्ति की तलाश करते हैं परन्तु चाहे धनी हो, शक्तिशाली हो, शौर्यवान हो, उन्हें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता अपने राज्य में, जो सर्वाधिक प्रसन्न हो। तब निराश हो एक दिन वे महल वापस लौट रहे होते हैं कि अचानक उनके नेत्र खेतों के बीच चारपाई डाल कर विश्राम करते एक किसान पर पड़ती है जो कुछ गुनगुना रहा होता है तथा बेहद प्रसन्न अनुभव होता है। उसको जाँचने के उद्देश्य से सैनिक कुछ दिन वहीं ठहर जाते हैं।

निरीक्षण करने के पश्चात् सैनिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह किसान वास्तव में राज्य का सर्वाधिक प्रसन्न व्यक्ति था अत: वे उसके समीप जा उससे राजा की उलझन से उत्पन्न दुःख के निवारण हेतु आग्रह करते हैं कि आप ही, राजा को प्रसन्न करने में सक्षम हो क्योंकि आप राज्य के सर्वाधिक सुखी मनुष्य हो।

किसान राजा के सहायतार्थ सैनिकों से कहता है कि मुझे क्या करना होगा? तब सैनिक राजा एवं ज्योतिषी के मध्य हुए सम्पूर्ण वार्तालाप को उसके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए, उस किसान से उसके वस्त्र (Shirt) राजा को देने का आग्रह करते हैं तब वह व्यक्ति अपनी मन्द-मन्द मुस्कान सहित यह कहता है कि उसके अधिकारक्षेत्र ने कोई वस्त्र है ही नहीं अर्थात् वह शर्ट धारण ही नहीं करता तथापि वह प्रसन्न था। सैनिक आश्चर्यचकित थे। अत: इस कथा से यह स्पष्ट है कि इस संसार में वही व्यक्ति प्रसन्न है जो भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु उनके पीछे नहीं जाता।

इस विषय पर एक भजन स्मरण हो आया-

**जैसी विधि रखे राम, तैसी विधि रहिए।**

**सीता-राम, सीता-राम,सीता-राम**
**कहिए।।**

श्रीभगवान् श्रीमद्भगवद्गीता जी के बारहवें अध्याय में उच्चारित करते हैं कि-

**तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येनकेनचित्।**
**अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।**

अर्थात्

जिसको निन्दा और स्तुति दोनों ही तुल्य है, जो मौनी है, जो किसी अल्प वस्तु से भी सन्तुष्ट है, जो अनिकेत है, वह स्थिर बुद्धि का भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।

**।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।**

---

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

**https://vivechan.learngeeta.com/feedback/**

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

**https://gift.learngeeta.com/**

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

**https://vivechan.learngeeta.com/**